उत्तम क्षमा धर्म

कोहुप्पत्तिस्स पुणो, बहिरंगं जदि हवेदि सक्खादं।
ण कुणदि किंचि वि कोहो, तस्स खमा होदि धम्मो त्ति ॥71॥

यदि क्रोध की उत्पत्ति का साक्षात् बहिरंग कारण हो फिर भी जो कुछ भी क्रोध नहीं करता उसके क्षमा धर्म होता है ॥

वारसणुपेक्खा, आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव

उत्तम मार्दव धर्म

कुलरूवजादिबुद्धिसु, तपसुदसीलेसु गारवं किंचि।
जो ण वि कुव्वदि समणो, मद्दवधम्मं हवे तस्स ॥72॥

अन्वयार्थ- जो मुनि कुल, रूप, जाति, बुद्धि, तप, श्रुत तथा शील के विषय में कुछ भी गर्व नहीं करता उसके मार्दव धर्म होता है ॥

वारसणुपेक्खा, आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव

उत्तम आर्जव धर्म

मोत्तूण कुडिलभावं, णिम्मलहिदएण चरदि जो समणो।
अज्जवधम्मं तइओ, तस्स दु संभवदि णियमेण ॥73॥

अन्वयार्थ- जो मुनि कुटिलभाव को छोड़कर निर्मल हृदय से आचरण करता है उसके नियम से तीसरा आर्जव धर्म होता है ॥

वारसणुपेक्खा, आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव

उत्तम सत्य धर्म

परसंतावणकारणवयणं मोत्तूण सपरहिदवयणं।
जो वददि भिक्खु तुरियो, तस्स दु धम्मं हवे सच्चं ॥74॥

अन्वयार्थ- दूसरों को संताप करनेवाले वचन को छोड़कर जो भिक्षु स्वपरहितकारी वचन बोलता है उसके चौथा सत्यधर्म होता है ॥७४॥

वारसणुपेक्खा, आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव

उत्तम शौच धर्म

कंखाभावणिवित्तिं, किच्चा वेरग्गभावणाजुत्तो।
जो वड्ढदि परममुणी, तस्स दु धम्मो हवे सोच्चं ॥75॥

अन्वयार्थ- जो उत्कृष्ट मुनि कांक्षा भाव से निवृत्ति कर वैराग्यभाव से रहता है उससे शौचधर्म होता है ॥७५॥

वारसणुपेक्खा, आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव

उत्तम संयम धर्म

वदसमिदिपालणाए, दंडच्चाएण इंदियजएण।
परिणममाणस्स पुणो, संजमधम्मो हवे णियमा ॥76॥

अन्वयार्थ- मन वचन काय की प्रवृत्तिरूप दंड को त्यागकर तथा इंद्रियों को जीतकर जो व्रत और समितियों से पालनरूप प्रवृत्ति करता है उसके नियम से संयमधर्म होता है ॥७६॥

वारसणुपेक्खा, आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव

उत्तम तप धर्म

विसयकसायविणिग्गहभावं काऊण झाणसज्झाए।
जो भावइ अप्पाणं, तस्स तवं होदि णियमेण ॥77॥

अन्वयार्थ- विषय और कषाय के विनिग्रहरूप भाव को करके जो ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा आत्मा की भावना करता है उसके नियम से तप होता है ॥७७॥

वारसणुपेक्खा, आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव

उत्तम त्याग धर्म

णिव्वेगतियं भावइ, मोहं चइऊण सव्वदव्वेसु।
जो तस्स हवे चागो, इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं ॥78॥

अन्वयार्थ- जो समस्त द्रव्यों के विषय में मोह का त्याग कर तीन प्रकार के निर्वेद की भावना करता है उसके त्याग धर्म होता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ॥७८॥

वारसणुपेक्खा, आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव

उत्तम आकिंचन्य धर्म

होऊण य णिस्संगो, णियभावं णिग्गहित्तु सुदुहदं।
णिद्दंदेण दु वट्टदि, अणयारो तस्स किंचण्हं ॥79॥

अन्वयार्थ- जो मुनि निःसंग-निष्परिग्रह होकर सुख और दुःख देने वाले अपने भावों का निग्रह करता हुआ निर्द्वंद्व रहता है अर्थात् किसी इष्ट-अनिष्ट के विकल्प में नहीं पड़ता उसके आकिंचन्य धर्म होता है ॥७९॥

वारसणुपेक्खा, आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

सव्वंगं पेच्छंतो, इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावं।
सो बम्हचेरभावं, सक्कदि खलु दुद्धरं धरिदुं ॥80॥

अन्वयार्थ- जो स्त्रियों के सब अंगों को देखता हुआ उनमें खोटे भाव को छोड़ता है अर्थात् किसी प्रकार के विकार भाव को प्राप्त नहीं होता वह निश्चय से अत्यंत कठिन ब्रह्मचर्य धर्म को धारण करने के लिए समर्थ होता है ॥८०॥

वारसणुपेक्खा, आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव

उत्तम क्षमा धर्म

क्रोधोत्पत्तिनिमित्ताविसाक्रोशा दिसंभवेकानुष्योपरमः क्षमाः

क्रोध की उत्पत्ति के निमित्तभूत असह्य आक्रोशादि के सम्भव होने पर भी कालुष्य भाव का नहीं होना क्षमा है।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक
(आचार्य श्री अकलंक देव कृत तत्त्वार्थ सूत्र टीका)

उत्तम मार्दव धर्म

जात्यादिमदावेशादभिमानाभावो मार्दवम् ।३।

जाति आदि मद के आवेश से अभिमान का अभाव होना मार्दव है।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक
(आचार्य श्री अकलंक देव कृत तत्त्वार्थ सूत्र टीका)

उत्तम आर्जव धर्म

योगस्यावक्रता आर्जवम् । ४ ।

योग की सरलता आर्जव है।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक
(आचार्य श्री अकलंक देव कृत तत्त्वार्थ सूत्र टीका)

उत्तम शौच धर्म

प्रकर्षप्राप्ता लोभनिवृत्तिः शौचम् ।५। लोभस्य निवृत्तिः प्रकर्षप्राप्ता शुचेर्भाव: कर्म वा शौचमिति निश्चीयते ।

प्रकर्षता को प्राप्त लोभ की निवृत्ति शौच है । आत्यन्तिक लोभ की निवृत्ति शौच है। वा शुचि का (पवित्रता का) भाव वा कर्म उत्तम शौच है, ऐसा निश्चय किया जाता है ।। ५ ।।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक
(आचार्य श्री अकलंक देव कृत तत्त्वार्थ सूत्र टीका)

उत्तम सत्य धर्म

सत्सु साधुवचनं सत्यम् ।९। सत्सु प्रशस्तेषु जनेषु साधुवचनं सत्यमित्युच्यते । तद्दशप्रकारं व्याख्यातम् ।

सत्जनों के साथ साधु वचन बोलना सत्य है। सत्-प्रशंसनीय मनुष्यों के साथ प्रशंसनीय वचन बोलना उत्तम सत्य कहलाता है, वह सत्य दस प्रकार का है।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक
(आचार्य श्री अकलंक देव कृत तत्त्वार्थ सूत्र टीका)

उत्तम संयम धर्म

समितिषु प्रवर्तमानस्य प्राणीन्द्रियपरिहारः संयमः ।१४।

समितियों में प्रवृत्ति करने वाले के प्राणी और इन्द्रियों का परिहार संयम है।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक
(आचार्य श्री अकलंक देव कृत तत्त्वार्थ सूत्र टीका)

उत्तम तप धर्म

कर्मक्षयार्थं तप्यत इति तपः ।

कर्मों का क्षय करने के लिये जो तपा जाता है, वह तप कहा जाता है।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक
(आचार्य श्री अकलंक देव कृत तत्त्वार्थ सूत्र टीका)

उत्तम त्याग धर्म

परिग्रहनिवृत्तिस्त्यागः ।१८।

परिग्रह की निवृत्ति को त्याग कहते हैं।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक
(आचार्य श्री अकलंक देव कृत तत्त्वार्थ सूत्र टीका)

उत्तम आकिंचन्य धर्म

ममेदमित्यभिसन्धिनिवृत्तिराकिञ्चन्यम् ।२१।

"यह मेरा है"। इस प्रकार की अभिसन्धि का त्याग करना आकिञ्चन्य है।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक
(आचार्य श्री अकलंक देव कृत तत्त्वार्थ सूत्र टीका)

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

अनुभूताङ्गनास्मरणतत्कथाश्रवणस्त्रीसंसक्तशयना-
सनादिवर्जनाद् ब्रह्मचर्यम् । २२ ।

अनुभूत अंगना का स्मरण, उसकी कथा श्रवण, स्त्रीसंसक्त शयन आसन आदि का त्याग करना ब्रह्मचर्य व्रत है ।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक
(आचार्य श्री अकलंक देव कृत तत्त्वार्थ सूत्र टीका)

उत्तम क्षमा धर्म

क्रोधोत्पत्तिनिमित्तानामत्यन्तं सति संभवे।
आक्रोशताडनादीनां कालुष्योपरमः क्षमा॥१४॥

अर्थ- गाली देना तथा मारना आदिक क्रोध की उत्पत्ति के बहुत भारी निमित्तों के रहते हुए भी कलुषता का अभाव होना क्षमा है।

श्री अमृतचंद्र आचार्य देव कृत तत्त्वार्थसार

उत्तम मार्दव धर्म

अभावो योऽभिमानस्य परैः परिभवे कृते।
जात्यादीनामना वेशान्मदानां मार्दवं हि तत्॥१५॥

दूसरों के द्वारा अनादर किये जाने पर भी जाति आदिक मदों का आवेश न होने से जो अभिमान का अभाव है वह मार्दव धर्म है।

श्री अमृतचंद्र आचार्य देव कृत तत्त्वार्थसार

उत्तम आर्जव धर्म

वाङ्मनःकाययोगानामवक्रत्वं तदार्जवम्।

वचन, मन और काय योगों की जो अवक्रता है वह आर्जव धर्म है।

श्री अमृतचंद्र आचार्य देव कृत तत्त्वार्थसार

उत्तम शौच धर्म

परिभोगोपभोगत्वं जीवितेन्द्रियभेदतः॥१६॥

चतुर्विधस्य लोभस्य निवृत्तिः शौचमुच्यते।

प्राणीसम्बन्धी परिभोग और उपभोग तथा इन्द्रियसम्बन्धी परिभोग और उपभोग के भेद से लोभ चार प्रकार का होता है उसका अभाव होना शौच धर्म कहलाता है।

श्री अमृतचंद्र आचार्य देव कृत तत्त्वार्थसार

उत्तम सत्य धर्म

ज्ञानचारित्र शिक्षादौ स धर्मः सुनिगद्यते।
धर्मोपबृंहणार्थं यत्साधु सत्यं तदुच्यते॥१७॥

ज्ञान और चारित्र की शिक्षा आदि के विषय में धर्मवृद्धि के अभिप्राय से जो निर्दोष वचन कहे जाते हैं वह सत्यधर्म कहलाता है।

श्री अमृतचंद्र आचार्य देव कृत तत्त्वार्थसार

उत्तम संयम धर्म

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं प्राणिनां वघवर्जनम्।
समितौ वर्तमानस्य मुनेर्भवति संयमः॥१८॥

समितियों का पालन करनेवाले मुनि का इन्द्रियविषयों में विरक्त होना तथा जीवों के वध का त्याग करना संयमधर्म है।

श्री अमृतचंद्र आचार्य देव कृत तत्त्वार्थसार

उत्तम तप धर्म

परं कर्मक्षयार्थं यत्तप्यते तत्तपः स्मृतम्।

कर्मों का क्षय करने के लिये जो तपा जावे वह तप कहलाता है।

श्री अमृतचंद्र आचार्य देव कृत तत्त्वार्थसार

उत्तम त्याग धर्म

त्यागस्तु धर्मशास्त्रादिविश्राणनमुदाहृतम्॥१९॥

धर्मशास्त्र आदि का देना त्यागधर्म कहा गया है।

श्री अमृतचंद्र आचार्य देव कृत तत्त्वार्थसार

उत्तम आकिञ्चन्य धर्म

ममेदमित्युपात्तेषु शरीरादिषु केषुचित्।
अभिसन्धिनिवृत्तिर्या तदाकिञ्चन्यमुच्यते॥२०॥

ग्रहण किये हुए शरीर आदि किन्हीं पदार्थों में 'यह मेरा है' इस प्रकार के अभिप्राय का जो अभाव है वह आकिञ्चन्यधर्म कहलाता है।

श्री अमृतचंद्र आचार्य देव कृत तत्त्वार्थसार

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

स्त्री संसक्तस्य शय्यादेरनुभूताङ्गनास्मृतेः।
तत्कथायाः श्रुतेश्च स्याद्ब्रह्मचर्यं हि वर्जनात्॥२१॥

स्त्री से सम्बन्ध रखनेवाले शय्या आदिक पदार्थ, पूर्वकाल में भोगी हुई स्त्री का स्मरण तथा स्त्रीसन्बन्धी कथा का सुनना इनके त्याग करने से ब्रह्मचर्य-धर्म होता है।

श्री अमृतचंद्र आचार्य देव कृत तत्त्वार्थसार

उत्तम क्षमा धर्म

कोहेण जो ण तप्पदि सुर-णर-तिरिएहिं कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे तस्स खमा णिम्मला होदि ॥394॥

जो (मुनि) देव मनुष्य तिर्यंच आदि से रौद्र (भयानक घोर) उपसर्ग करने पर भी क्रोध से तप्तायमान नहीं होता है उस मुनि के निर्मल क्षमा होती है।

वारसणुवेक्खा, स्वामी कार्तिकेय

उत्तम मार्दव धर्म

उत्तम-णाण-पहाणो उत्तम-तवयरण-करण-सीलो वि।
अप्पाणं जो हीलदि मद्दव-रयणं भवे तस्स ॥395॥

जो मुनि उत्तम ज्ञान से तो प्रधान हो उत्तम तपश्चरण करने का जिसका स्वभाव हो जो अपने आत्मा को मद-रहित करे - अनादररूप करे उस मुनि के मार्दव नामक धर्मरत्न होता है।

वारसणुवेक्खा, स्वामी कार्तिकेय

उत्तम आर्जव धर्म

जो चिंतेइ ण वंकं ण कुणदि वंकं ण जंपदे वंकं।
ण य गोवदि णिय-दोसं अज्जव-धम्मो हवे तस्स ॥396॥

जो मुनि मन में वक्रतारूप चिन्तवन नहीं करे काय से वक्रता नहीं करे वचन से वक्ररूप नहीं बोले और अपने दोषों को नहीं छिपावे उस मुनि के उत्तम आर्जव धर्म होता है।

वारसणुवेक्खा, स्वामी कार्तिकेय

उत्तम शौच धर्म

सम-संतोस-जलेणं जो धोवदि तिव्व -लोह-मल-पुंजं।
भोयण-गिद्धि-विहीणो तस्स सउच्चं हवे विमलं ॥397॥

जो (मुनि) समभाव (रागद्वेष रहित परिणाम) और सन्तोष (सन्तुष्ट भाव) रूपी जल से तीव्र तृष्णा और लोभरूपी मल के समूह को धोवे (नाश करे) भोजन की गृद्धि (अति चाह) से रहित हो उस मुनि का चित्त निर्मल होता है अतः उसके उत्तम शौच धर्म होता है।

वारसणुवेक्खा, स्वामी कार्तिकेय

उत्तम सत्य धर्म

जिण-वयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि।
ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्च-वाई सो ॥398॥

जो मुनि जिनसूत्र ही के वचन को कहे उसमें जो आचार आदि कहा गया है उसका पालन करने में असमर्थ हो तो भी अन्यथा नहीं कहे और जो व्यवहार से भी अलीक (असत्य) नहीं कहे वह मुनि सत्यवादी है, उसके उत्तम सत्यधर्म होता है।

वारसणुवेक्खा, स्वामी कार्तिकेय

उत्तम संयम धर्म

जो जीव-रक्खण परो गमणागमणादि -सव्व-कज्जेसु।
तण-छेदं पि ण इच्छदि संजम-धम्मो हवे तस्स ॥399॥

जो मुनि जीवों की रक्षा में तत्पर होता हुआ गमन आगमन आदि सब कार्यों में तृण का छेदमात्र भी नहीं चाहता है, नहीं करता है उस मुनि के संयमधर्म होता है।

वारसणुवेक्खा, स्वामी कार्तिकेय

उत्तम तप धर्म

इह-पर-लोय-सुहाणं णिरवेक्खो जो करेदि सम-भावो।
विविहं काय-किलेसं तव-धम्मो णिम्मलो तस्स ॥400॥

जो (मुनि) इसलोक परलोक के सुख की अपेक्षा से रहित होता हुआ (सुख-दुःख, शत्रु-मित्र, तृण-कंचन, निन्दा-प्रशंसा आदि में रागद्वेष रहित) समभावी होता हुआ अनेक प्रकार कायक्लेश करता है उस मुनि के निर्मल तपधर्म होता है।

वारसणुवेक्खा, स्वामी कार्तिकेय

उत्तम त्याग धर्म

जो चयदि मिट्ठ-भोज्जं उवयरणं रय-दोस-संजणयं।
वसदिं ममत्त-हेदुं चाय-गुणो सो हवे तस्स ॥401॥

जो मुनि मिष्ट भोजन को छोड़ता है रागद्वेष उत्पन्न करनेवाले उपकरण को छोड़ता है ममत्व का कारण वसतिका को छोड़ता है उस मुनि के त्याग नाम का धर्म होता है।

वारसणुवेक्खा, स्वामी कार्तिकेय

उत्तम निर्ग्रंथ (आकिंचन्य) धर्म

ति-विहेण जो विवज्जदि चेयणमियरं च सव्वहा संगं।
लोय-ववहार -विरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्स ॥402॥

जो (मुनि) लोक व्यवहार से विरक्त होकर चेतन अचेतन परिग्रह को सर्वथा तीनों प्रकार से (मन-वचन-काय कृत-कारित-अनुमोदना से) छोड़ता है उसे (मुनि के) निर्ग्रन्थत्व होता है।

वारसणुवेक्खा, स्वामी कार्तिकेय

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

जो परिहरेदि संगं महिलाणं णेव पस्सदे रूवं।
काम-कहादि- णिरीहो णव-विह-बंभं हवे तस्स ॥403।।

जो मुनि स्त्रियों की संगति नहीं करता है उनके रूप को नहीं देखता है काम की कथा आदि (स्मरणादिक से) रहित हो ऐसा (नवधा कहिये मन-वचन-काय कृत-कारित-अनुमोदना और तीनों काल से) नव कोटि से करता है उसे (मुनि के) ब्रह्मचर्य धर्म होता है।

वारसणुवेक्खा, स्वामी कार्तिकेय

उत्तम क्षमा धर्म

जडजनकृत-बाधाऽक्रोशहासाऽप्रियादा-;
वपि सति न विकारं, यन्मनो याति साधोः ।
अमलविपुलचित्तैरुत्तमा सा क्षमादौ-;
शिवपथपथिकानां , सत्सहायत्वमेति ॥82॥

अन्वयार्थः मूर्खजनों द्वारा किए हुए बन्धन, क्रोध, हास्य आदि के होने पर तथा कठोर वचनों के बोलने पर भी जो साधु, अपने निर्मल धीर-वीर चित्त से विकृत नहीं होता, उसी का नाम उत्तम क्षमा है । यह उत्तम क्षमा, मोक्षमार्ग में जाने वाले मुनियों की सबसे पहले सहायता करने वाली है ।

पद्मनंदी पंचविंशतिका जी

उत्तम मार्दव धर्म

धर्माङ्गमेतदिह मार्दवनामधेयं;
जात्यादिगर्वपरिहारमुशन्ति सन्तः ।
तद्धार्यते किमुत, बोधदृशा समस्तं;
स्वप्नेन्द्रजालसदृशं, जगदीक्षमाणैः ॥87॥

अन्वयार्थ:उत्तम पुरुष, जाति-बल-ज्ञान-कुल आदि गर्वों के त्याग को मार्दव धर्म कहते हैं - यह धर्मों का अंगभूत है; इसलिए जो मनुष्य, अपनी सम्यग्ज्ञानरूपी दृष्टि से समस्त जगत् को स्वप्न तथा इन्द्रजाल के तुल्य देखते हैं, वे अवश्य ही इस मार्दव नामक धर्म को धारण करते हैं ।

पद्मनंदी पंचविंशतिका जी

उत्तम आर्जव धर्म

हृदि यत्तद्वाचि बहिः, फलति तदेवाऽऽर्जवं भवत्येतत् ।
धर्मो निकृतिरधर्मो, द्वाविह सुरसद्मनरकपथौ ॥89॥

अन्वयार्थ:मन में जो बात होवे, उसी को वचन से प्रकट करना चाहिए (ऐसा न हो कि मन में कुछ होवे तथा वचन से कुछ अन्य ही बोलें) इसे आचार्य आर्जवधर्म कहते हैं तथा मीठी बात करके दूसरे को ठगना, इसको अधर्म कहते हैं । इनमें से आर्जवधर्म से तो स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा अधर्म, नरक को ले जाने वाला होता है । इसलिए आर्जवधर्म के पालन करने वाले भव्य जीवों को किसी के साथ माया से व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिए ।

पद्मनंदी पंचविंशतिका जी

उत्तम सत्य धर्म

स्वपरहितमेव मुनिभिः, मितममृतसमं सदैव सत्यं च ।
वक्तव्यं वचमथ, प्रविधेयं धीधनैर्मौनम् ॥91॥

अन्वयार्थ: उत्कृष्ट ज्ञान को धारण करने वाले मुनियों को प्रथम तो बोलना ही नहीं चाहिए । यदि बोलें तो ऐसा वचन बोलना चाहिए, जो समस्त प्राणियों का हित करने वाला हो, परिमित हो, अमृत के समान प्रिय हो और सर्वथा सत्य हो; किन्तु जो वचन, जीवों को पीड़ा देने वाला और कड़वा हो, उस वचन की अपेक्षा मौन-साधना ही अच्छा है ।

पद्मनंदी पंचविंशतिका जी

उत्तम शौच धर्म

यत्परदारार्थादिषु, जन्तुषु निःस्पृहमहिंसकं चेतः ।
दुश्छेद्यान्तर्मलहृत्तदेव शौचं परं नाऽन्यत् ॥94॥

अन्वयार्थ: जो परस्त्री तथा पराये धन में इच्छारहित हैं, किसी भी जीव को मारने की जिनकी भावना नहीं है और जो अत्यन्त दुर्भेद्य लोभ, क्रोधादि मलों का हरण करने वाला है- ऐसा चित्त ही शौचधर्म है, किन्तु उससे भिन्न कोई शौचधर्म नहीं है ।

पद्मनंदी पंचविंशतिका जी

उत्तम संयम धर्म

जन्तुकृपार्दितमनसः, समितिषु साधोः प्रवर्तानस्य ।
प्राणेन्द्रियपरिहारं, संयममाहु र्हामुनयः ॥96॥

अन्वयार्थ: जिसका चित्त, जीवों की दया से भीगा हुआ है, जो ईर्या-भाषा-एषणा आदि पाँच समितियों का पालन करने वाला है - ऐसे साधु के जो षट्काय के जीवों की हिंसा तथा इन्द्रियों के विषयों का त्याग है, उसी को गणधरादि देव संयमधर्म कहते हैं ।

पद्मनंदी पंचविंशतिका जी

उत्तम तप धर्म

मिथ्यात्वादे:, यदिह भविता, दुःखमुग्रं तपोभ्यो;
जातं तस्मादुदककणिकैकेव सर्वाब्धिनीरात् ।
स्तोकं तेन, प्रभवमखिलं, कृच्छ्रलब्धे नरत्वे;
यद्येतर्हि, स्खलति तदहो, का क्षतिर्जीव ते स्यात् ॥100॥

अन्वयार्थ: हे जीव! जिस प्रकार समस्त समुद्र की अपेक्षा जल का कण अत्यन्त छोटा होता है, उसी प्रकार तप के करने से तुझे बहुत थोड़े दुःख का अनुभव करना पड़ता है; किन्तु जिस समय मिथ्यात्व के उदय से तू नरक जाएगा, उस समय तुझे नाना प्रकार के छेदन-भेदन आदि असह्य दुःखों का सामना करना पड़ेगा तो भी तू न जाने तप से क्यों भयभीत होता है? अरे! तेरी तप करने में क्या हानि है?

पद्मनंदी पंचविंशतिका जी

उत्तम त्याग धर्म

व्याख्या या क्रियते श्रुतस्य यतये, यद्दीयते पुस्तकं;
स्थानं संयमसाधनादिकमपि, प्रीत्या सदाचारिणा ।
स त्यागो वपुरादिनिर्म तया, नो किंचनास्ते यते:;
आकिंचन्यमिदं च संसृतिहरो, धर्मः सतां सम्मतः ॥101॥

अन्वयार्थ:शास्त्रों का भलीभाँति व्याख्यान करना तथा मुनियों को पुस्तक, स्थान और संयम-शौच आदि के साधन, पीछी-कमण्डलु आदि देना, सदाचारियों का उत्कृष्ट त्यागधर्म है । 'मेरा कुछ भी नहीं है' - ऐसा विचार कर, अत्यन्त निकट शरीर से भी ममता छोड़ देना, आकिञ्चन्य धर्म है, वह यतियों को होता है, वह समस्त संसार का नाश करने वाला है और समस्त श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा आदरणीय है ।

पद्मनंदी पंचविंशतिका जी

उत्तम आकिंचन्य धर्म

परं मत्वा सर्वं, परिहृतमशेषं श्रुतविदा; वपुः
पुस्ताद्यास्ते, तदपि निकटं चेदिति मतिः ।
ममत्वाभावे तत्, सदपि न सदन्यत्र घटते;
जिनेन्द्राज्ञाभंगो, भवति च हठात् कल्मषमृषेः ॥

अन्वयार्थ : समस्त शास्त्रों को जानने वाले वीतरागदेव ने अपनी आत्मा से समस्त वस्तुओं को भिन्न जान कर सबका त्याग कर दिया है । यदि कहोगे कि सबको छोड़ते समय उन्होंने शरीर, पुस्तकादि का त्याग क्यों नहीं किया? तो उसका समाधान यह है कि उनकी शरीरादि में भी किसी प्रकार की ममता नहीं रही है; इसलिए वे मौजूद होते हुए भी नहीं मौजूद की तरह ही हैं अर्थात् मुनियों के शरीरादि का साथ, आयुकर्म का नाश हुए बिना छूट नहीं सकता यदि वे उन शरीरादि को बीच में ही छोड़ देवें तो उनको प्राणघात करने के कारण हिंसा का भागी होना पड़ेगा; इसलिए उनके शरीरादि तो रहते हैं, किन्तु वे शरीरादि में किसी प्रकार का ममत्व नहीं रखते । यदि वे शरीरादि में किसी प्रकार का ममत्व करें तो उनको जिनेन्द्र की आज्ञा-भंग करनेरूप महान दोष का भागी होना पड़ेगा अर्थात् जब तक उनको ममत्व रहेगा, तब तक वे मुनि ही नहीं कहे जा सकते हैं ।

पद्मनंदी पंचविंशतिका जी - 103

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

यत्संगाधारमेतत् चलति लघु च यत्, तीक्ष्णदुःखौघधारं;
मृत्पिण्डीभूतं, कृतबहुविकृति,-भ्रान्तिसंसारचक्रम् ।
ता नित्यं यन्मुक्षुः, यतिरमलमतिः, शान्तमोहः प्रपश्येत्;
जामीः पुत्रीः सवित्रीरिव हरिणदृशः, तत्परं ब्रह्मचर्य् ॥104॥

अन्वयार्थः जिस प्रकार कुम्भकार का चाक, जमीन के आधार से चलता है, उस चाक की तीक्ष्ण धारा रहती है, उसके ऊपर मिट्टी का पिण्ड भी रहता है तथा वह चाक, नाना प्रकार के कुसूल, स्थास आदि घट के विकारों को करता है; उसी प्रकार संसाररूपी चाक की आधार यह स्त्री है अर्थात् यह स्त्री न होती तो यह जीव, कदापि संसार में भटकता न फिरता ।

पद्मनंदी पंचविंशतिका जी

#1

उत्तम क्षमा धर्म

क्रोध नहीं करना तथा संसार के तमाम जीवों से मैत्री भाव का होना उत्तम क्षमा कहलाता है। अगर किसी जीव ने कर्म के उदय से किसी जीव के साथ कोई तरह का दुर्व्यवहार रूप गाली देना, मारना आदि किया हो तो उसको सुनकर या सहकर मन में क्लेश न करते हुए उसको क्षमा कर देना सो ही क्षमा धर्म है।

~ स्वभाव बोध मार्तंड जी

#2

उत्तम मार्दव धर्म

मानकषाय को जीतना ही मार्दव धर्म है। इस धर्म को धारण करने की यही परीक्षा है कि जिस समय कोई अन्य पुरुष किसी प्रकार के गर्व के आवेश में आकर अनादर कर देवे तो उस समय अपनी आत्मा में अनादर करने वाले के प्रति किसी प्रकार के प्रतिकार करने की भावना नहीं होना और तत्त्व स्वरूप का चिन्तवन करते हुए उसको सहन कर जाना ही मार्दव धर्म है।

~ स्वभाव बोध मार्तंड जी

उत्तम आर्जव धर्म

माया कषाय का जीतना आर्जव धर्म है। मन वचन काय को सरल रखना, किसी के प्रति कपट भाव नहीं रखना, मन में जैसे बात हो उन्हीं को वचन से प्रगट करना तथा वैसी ही काय की चेष्टा करना सो आर्जव धर्म है।

~ स्वभाव बोध मार्तंड जी

#4

उत्तम सत्य धर्म

सर्वथा झूठ बोलने का त्याग करना सत्य धर्म है। हित मित प्रिय प्रमाणीक वचन बोलना, निंद्य गुह्य और अवद्यवचन नहीं बोलना, दूसरों की आत्मा, में संक्लेश उत्पन्न करने वाले वचन नहीं बोलना जो जैसा हो उसको वैसा ही कहना सत्यधर्म है।

~ स्वभाव बोध मार्तंड जी

#5

उत्तम शौच धर्म

तत्त्वविवेक पूर्वक लोभ कषाय का त्याग करना शौचधर्म है। शरीर की सफाई रखना, स्नान करना, तेल फुलैल लगाना, साफ कपड़े पहनना शौच नहीं है असली शौच तो हृदय से लोभ का त्याग करना ही शौचधर्म है क्योंकि लोभ ही संपूर्ण पाप का जनक है।

~ स्वभाव बोध मार्तंड जी

#6

उत्तम संयम धर्म

छह काय के जीवों की रक्षा करना तथा पांचों इन्द्रियों और मन को वश में करना इसी का नाम संयम है। संयम ही तमाम कर्मों का नाश करने वाला है इसी से आत्मा निर्मलता होती है बडे बड़े पुण्यात्मा तीर्थंकरों ने भी इसी संयम से सिद्धपद प्राप्त किया। ऐसा दुर्लभ संयम मनुष्य भव में ही धारण किया जा सकता है।

~ स्वभाव बोध मार्तंड जी

उत्तम तप धर्म

इन्द्रियों और मन के विषयों में उत्पन्न होने वाली अभिलाषाओं को रोकना तथा आत्मा में रहने वाले कषाय रूपी मल के शोधने के लिए संयम रूपी अग्नि को प्रज्वलित करना तप है। लोभ कषाय के उदय से नाना प्रकार की इच्छायें पैदा होती हैं जो इच्छाएं आत्मा को संयम से दूर रखती हैं ऐसी इच्छाओं का रोकना ही तप है।

~ स्वभाव बोध मार्तंड जी

#8

उत्तम त्याग धर्म

दश प्रकार (क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य- चांदी, सुवर्ण- सोना, धन- पशु आदि, धान्य- अनाज, दासी- दास कुप्य कपड़ादि, भाण्ड- बर्तन) का बाह्य परिग्रह और १४ प्रकार (मिथ्यात्व १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ ५ हास्य ६ रति ७ अरति ८ शोक ९ भय १० जुगुप्सा ११ स्त्रीवेद १२ पुरुषवेद १३ और नपुंसकवेद १४) का त्याग इस प्रकार २४ प्रकार के परिग्रह का त्याग करना त्याग- धर्म है

~ स्वभाव बोध मार्तंड जी

#9

उत्तम आकिञ्चन धर्म

आत्मस्वरूप से भिन्न जो शरीरादिक उनमें संस्कारादिक के अभाव के निमित्त ये हमारा, ऐसा ममत्वरूप अभिप्राय का अभाव सो आकिञ्चन्य धर्म है।

~ स्वभाव बोध मार्तंड जी

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

पहिली जो नाना प्रकार के कला- गुणों से चतुर ऐसी स्त्रियों का अनुभव किया हो इस समय उनके स्मरण करने का त्याग, तथा स्त्रीमात्र की कथा श्रवण करने का त्याग, रस सुगंधादि से वासित स्त्रियों के संसर्गसहित शय्यासनादिक के संसर्ग का त्याग करना तथा विषयानुराग रहित होकर ब्रह्म जो अपना शुद्ध आत्मा उसमें चर्या कहिये, प्रवर्तना सो ब्रह्मचर्य है। इस प्रकार कर्मों को रोकने के लिये दश प्रकार के धर्मों का अनुभवन करना चाहिये।

~ स्वभाव बोध मार्तंड जी

उत्तम क्षमा धर्म

जिसके उत्तमक्षमा होती है, उसका नरक - तिर्यंच दोनों गतियों में गमन नहीं होता है ।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम क्षमा धर्म

उत्तमक्षमा तीनलोक में सार है।
उत्तमक्षमा संसार समुद्र से तारनेवाली है,
, रत्नत्रय को धारण करानेवाली है, दुर्गति
के दुःखों को हरनेवाली है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम मार्दव धर्म

मान कषाय तो संसार का बढ़ाने वाला है, किन्तु मार्दव संसार परिभ्रमण का नाश करने वाला है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम मार्दव धर्म

आत्मा और मान कषाय के भेद को अनुभव करके मान को छोड़ना उसका नाम मार्दव गुण है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम आर्जव धर्म

आर्जव का अर्थ सरलता है । मन-वचन-काय की कुटिलता का अभाव वह आर्जव है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम आर्जव धर्म

कुटिलता छोड़कर कर्म का क्षय करने वाला आर्जव धर्म धारण करो

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम शौच धर्म

यदि अपनी आत्मा की पवित्रता चाहते हो तो अन्याय का धन मत ग्रहण करो, अभक्ष्य भक्षण नहीं करो, परस्त्री की वांछा नहीं करो। शौचधर्म तो परमात्मा के ध्यान से होता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह से शौचधर्म होता है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम शौच धर्म

शौचधर्म तो आत्मा को उज्ज्वल करने से होता है। आत्मा लोभ से, हिंसा से अत्यन्त मलिन हो रहा है, अतः आत्मा के लोभमल का अभाव होने से शुचिता होगी।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम सत्य धर्म

सत्य से सभी आपत्तियों का नाश होता है ।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम सत्य धर्म

सत्य सहित ही अणुव्रत - महाव्रत होते हैं । सत्य के बिना समस्त व्रत, संयम नष्ट हो जाते हैं।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम संयम धर्म

संसार में दुःखी जीवों का संयम बिना कोई अन्य शरण नहीं है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम संयम धर्म

संयम बिना हमारे मनुष्य भव की एक घड़ी भी नहीं व्यतीत हो, संयम बिना आयु निष्फल है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम तप धर्म

इच्छा का निरोध करना वह तप है।
तप चार आराधनाओं में प्रधान है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम तप धर्म

कर्मों का संवर तथा निर्जरा करने का प्रधान कारण तप है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम त्याग धर्म

समस्त दुःख दूर करने में एक त्यागधर्म ही समर्थ है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम त्याग धर्म

परिग्रह के बंधन में बंधे जीव परिग्रह के त्यागने से ही छूटकर मुक्त होते हैं। अतः त्यागधर्म धारण करना ही श्रेष्ठ है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम आकिंचन्य धर्म

अपने ज्ञानदर्शनमय स्वरूप के बिना अन्य किंचिन्मात्र भी मेरा नहीं है, मैं किसी अन्य द्रव्य का नहीं हूँ- ऐसे अनुभव को आकिंचन्य धर्म कहते हैं।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम आकिंचन्य धर्म

समस्त धर्मों में प्रधान धर्म आकिंचन्य ही मोक्ष का निकट समागम कराने वाला है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

समस्त विषयों में अनुराग छोड़कर ब्रह्म जो ज्ञायक स्वभाव आत्मा उसमें चर्या अर्थात् प्रवृत्ति करना वह ब्रह्मचर्य है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

ब्रह्मचर्य बिना व्रत-तप समस्त निस्सार हैं ब्रह्मचर्य बिना सकल कायक्लेश निष्फल है।

पं. सदासुख दास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी की टीका)

उत्तम क्षमा धर्म

खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, बेरं मज्झं ण केण वि ।।86।।

मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ। सब जीव मुझे क्षमा करें। मेरा सब जीवों के प्रति मैत्री भाव है। मेरा किसी से वैर नही है।

समणसुत्तं (जिनेंद्र वर्णी जी संकलित)

उत्तम मार्दव धर्म

कुलरूवजादिबुद्धिसु तवसुदसीलेसु गारवं किंचि ।
जो णवि कुव्वदि समणो मद्दवधम्मं हवे तस्स ॥88॥

जो श्रमण कुल, रूप, जाति, ज्ञान, तप, श्रुत और शील का तनिक भी गर्व नहीं करता, उसके मार्दवधर्म होता है।

समणसुत्तं (जिनेंद्र वर्णी जी संकलित)

उत्तम आर्जव धर्म

जो चिंतेइ ण वंकं ण कुणदि वंकं ण जपंदे वकं।
ण य गोवदि णिय-दोसं अज्जव धम्मो हवे तस्स।।91।।

जो कुटिल विचार नही करता, कुटिल कार्य नही करता, कुटिल वचन नही बोलता और अपने दोषों को नही छुपाता, उसके आर्जव धर्म होता है।

समणसुत्तं (जिनेंद्र वर्णी जी संकलित)

उत्तम सत्य धर्म

सच्चम्मि वसदि तवो, सच्चम्मि संजमो तह वसे सेसा वि गुणा।
सच्चं णिबंधणं हि य, गुणाणमुदधीव मच्छाणं।।96।।

सत्य में तप, संयम और शेष समस्त गुणों का वास होता है । जैसे समुद्र मत्स्यों का उत्पत्तिस्थान है, वैसे ही सत्य समस्त गुणों का कारण है ।

समणसुत्तं (जिनेंद्र वर्णी जी संकलित)

उत्तम शौच धर्म

समसंतोसजलेणं, जो धोवदि तिब्व-लोहमल- पुंजं ।
भोयण-गिद्धि-विहीणो, तस्स सउच्चं हवे विमलं ॥100॥

जो समता व सन्तोषरूपी जल से तीव्र लोभरूपी मल- समूह को धोता है और जिसमें भोजन की लिप्सा नही है, उसके विमल शौचधर्म होता है।

समणसुत्तं (जिनेंद्र वर्णी जी संकलित)

उत्तम संयम धर्म

वय समिदि कसायाणं, दंडाणं तह इंदियाण पंचण्हं ।
धारण- पालण- णिग्गह चाय-जओ संजमो भणिओ ॥101॥

व्रत धारण, समिति पालन, कषाय- निग्रह, मन-वचन-काया की प्रवृत्तिरूप दण्डों का त्याग, पंचेन्द्रिय-जय-इन सबको संयम कहा जाता है।

समणसुत्तं (जिनेंद्र वर्णी जी संकलित)

उत्तम तप धर्म

विसयकसाय - विणिग्गहभावं, काऊण झाणसज्झाए ।
जो भावइ अप्पाणं, तस्स तवं होदि णियमेण ॥102॥

इन्द्रिय विषयों तथा कषायों का निग्रह कर ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा जो आत्मा को भावित करता है उसी के तपधर्म होता है ।

समणसुत्तं (जिनेंद्र वर्णी जी संकलित)

उत्तम त्याग धर्म

जे य कंते पिए कं पिए भोए, लद्धे विपिट्ठिकुव्वइ ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चई ॥104॥

त्यागी वही कहलाता है, जो कान्त और प्रिय भोग उपलब्ध होने पर उनकी ओर से पीठ फेर लेता है और स्वाधीनतापूर्वक भोगों का त्याग करता है।

समणसुत्तं (जिनेंद्र वर्णी जी संकलित)

उत्तम आकिंचन्य धर्म

होऊण य णिस्संगो, णियभावं णिग्गहित्तु सुहदुहदं ।
णिद्दंदेण दु वट्टदि, अणयारो तस्साऽऽकिचण्णं ॥105॥

जो मुनि सब प्रकार के परिग्रह का त्याग कर निःसंग हो जाता है, अपने सुखद व दुखद भावों का निग्रह करके निर्द्वन्द्व विचरता है, उसके आकिंचन्य धर्म होता है।

समणसुत्तं (जिनेंद्र वर्णी जी संकलित)

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

जह सीलरक्खयाणं, पुरिसाणं णिंदिदाओ महिलाओ ।
तह सीलरक्खयाणं महिलाणं णिंदिदा पुरिसा ||115||

जैसे शील रक्षक पुरुषों के लिए स्त्रियां निन्दनीय हैं वैसे ही शीलरक्षिका स्त्रियों के लिए पुरुष निन्दनीय है । (दोनों को एक-दूसरे से बचना चाहिए।)

समणसुत्तं (जिनेंद्र वर्णी जी संकलित)

Supreme Forgiveness

खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, बेरं मज्झं ण केण वि ।।86।।

I forgive all living beings and may all living beings forgive me: I cherish feelings of friendship towards all and I harbour enmity towards none.

"SamanSuttam" Compiled by Jinendra Varni Ji

Supreme Modesty

कुलरूवजादिबुद्धिसु तवसुदसीलेसु गारवं किंचि ।
जो णवि कुव्वदि समणो मद्दवधम्मं हवे तस्स ॥88॥

A monk who doesnot boast even slightly of his family, handsomeness, caste, leaming, penance, scriptural knowledge and character observes the religion of humility.

"SamanSuttam" Compiled by Jinendra Varni Ji

Supreme Straightforwardness

जो चिंतेइ ण वंकं ण कुणदि वंकं ण जपंदे वकं।
ण य गोवदि णिय-दोसं अज्जव धम्मो हवे तस्स।।91।।

He who does not think crookedly, does not act crookedly, does not speak crookedly and does not hide his own weaknesses, observes the virtue of straightforwardness.

"SamanSuttam" Compiled by Jinendra Varni Ji

Supreme Truth

सच्चम्मि वसदि तवो, सच्चम्मि संजमो तह वसे सेसा वि गुणा।
सच्चं णिबंधणं हि य, गुणाणमुदधीव मच्छाणं।।96।।

Truthfulness is the abode of penance, of self-control and of all other virtues; indeed truthfulness is the place of origination of all other noble qualities as the ocean is that of fishes.

"SamanSuttam" Compiled by Jinendra Varni Ji

Supreme Purity (उत्तम शौच)

समसंतोसजलेणं, जो धोवदि तिब्व-लोहमल- पुंजं ।
भोयण-गिद्धि-विहीणो, तस्स सउच्चं हवे विमलं ॥100॥

One who washes away the dirty heap of greed with the water of equanimity and contentment and is free from lust for food, will attain perfect purity.

"SamanSuttam" Compiled by Jinendra Varni Ji

Supreme Self Restraint

वय समिदि कसायाणं, दंडाणं तह इंदियाण पंचण्हं ।
धारण- पालण- णिग्गह चाय-जओ संजमो भणिओ ॥101॥

Self-restraint consists of the keeping of five vows, observance of five rules of carefulness (samiti) subjugation of (four) passions, controlling all activities of mind, speech and body, and victory over the senses.

"SamanSuttam" Compiled by Jinendra Varni Ji

Supreme Penance

विसयकसाय - विणिग्गहभावं, काऊण झाणसज्झाए ।
जो भावइ अप्पाणं, तस्स तवं होदि णियमेण ॥102॥

Penance consists in concentration on the self by meditation, study of the scripture and restraining the senses and passions.

"SamanSuttam" Compiled by Jinendra Varni Ji

Supreme Renunciation

जे य कंते पिए कं पिए भोए, लद्धे विपिट्ठिकुव्वइ ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चई ॥104॥

He Alone can be said to have truly renounced everything who has turned his back on all availble, beloved and dear objects of enjoyment possessed by him.

"SamanSuttam" Compiled by Jinendra Varni Ji

Uttam Aakinchany

होऊण य णिस्संगो, णियभावं णिग्गहित्तु सुहदुहदं ।
णिद्दंदेण दु वट्टदि, अणयारो तस्साऽऽकिचण्णं ॥105॥

That monk alone acquires the virtue of nonpossessiveness, who renouncing the sense of ownership and attachment and controlling his own thoughts, remains unperturbed by the pair of oppiness and misery.

"SamanSuttam" Compiled by Jinendra Varni Ji

Supreme Celibacy

जह सीलरक्खयाणं, पुरिसाणं णिंदिदाओ महिलाओ ।
तह सीलरक्खयाणं महिलाणं णिंदिदा पुरिसा ||115||

Just as women become censurable by men observing celibacy, similarly men become censurable by women observing celibacy.

"SamanSuttam" Compiled by Jinendra Varni Ji